बढ़ते खेत, घटते वन

दो दशक पहले की तुलना में आज दुनिया में अधिक हरियाली है. धरती को हरा-भरा बनाने के प्रयासों में चीन और भारत अग्रणी भूमिका निभा रहे हैं. नासा की सैटेलाइट तस्वीरों पर आधारित अध्ययन के ये निष्कर्ष हरित क्षेत्र में कमी और बढ़ोतरी को लेकर आम धारणाओं के विपरीत हैं. पर्यावरण के क्षरण, बढ़ते प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन से जुड़ी समस्याओं से चिंतित विश्व के लिए यह अध्ययन राहत की खबर है, लेकिन इसके निष्कर्षों पर गंभीरता से विचार करने की जरूरत भी है. भारत और चीन के पास दुनिया के कुल हरित क्षेत्र का महज नौ फीसदी हिस्सा ही है, लेकिन हरियाली के विस्तार में दोनों देशों का योगदान एक-तिहाई है. अध्ययन ने रेखांकित किया है कि यह उपलब्धि आश्चर्यजनक है, क्योंकि आम तौर पर माना जाता है कि ज्यादा आबादी के देशों में जमीन के बेतहाशा दोहन से भूमि की उर्वरता घटती जा रही है, परंतु जहां चीन में हरित क्षेत्र के विस्तार में 42 फीसदी जंगली इलाके और 32 फीसदी खेती शामिल हैं, वहीं भारत में हरियाली की बढ़त में 82 फीसदी खेतिहर जमीन का योगदान है. जंगलों का योगदान सिर्फ 4.4 फीसदी है. यह हिसाब चिंताजनक है, क्योंकि हमारे देश में खेती में भू-जल का इस्तेमाल बहुत अधिक होता है और भविष्य में जलस्तर के लगातार नीचे जाने तथा मौसम के मिजाज में बदलाव से खेती की रूप-रेखा भी बदलेगी. पानी के संकट और प्राकृतिक आपदाओं से तबाही की समस्याएं गंभीर होती जा रही हैं. यदि इस सिलसिले पर रोक नहीं लगी या वैकल्पिक उपायों पर ध्यान नहीं दिया गया, तो हरित क्षेत्रों की बढ़वार उलटी दिशा में गतिशील हो जायेगी. इस शोध में यह भी चिह्नित किया गया है कि ब्राजील और इंडोनेशिया जैसे देशों में उष्णकटिबंधीय वनों के सिमटते जाने से हुए नुकसान की भरपाई हरियाली के मौजूदा विस्तार से नहीं की जा सकती है. वर्ष 2000 के बाद से चीन और भारत में खाद्यान्न उत्पादन में 35 फीसदी से ज्यादा की बढ़त हुई है. विकास प्रक्रिया में औद्योगिकीकरण और नगरीकरण पर भी खूब जोर दिया गया है. जैसा कि इस अध्ययन और अन्य रिपोर्टों से इंगित होता है, चीन ने वन क्षेत्र के विस्तार पर भी ध्यान दिया है. किंतु, भारत में जंगल निरंतर काटे जा रहे हैं. बीते ढाई दशकों में दुनिया ने हर घंटे एक हजार फुटबॉल मैदान के बराबर वन क्षेत्र को खोया है. साल 2014 से 2017 के बीच हमारे देश में हर दिन 63 फुटबॉल मैदान के बराबर जंगली इलाके को खेत, खनन, शहर, सड़क और उद्योग के लिए उजाड़ा गया. पिछले साल वन सर्वेक्षण रिपोर्ट में जानकारी दी गयी थी कि भारत 22 फीसदी से कम के आंकड़े के साथ अपने भू-भाग के 33 फीसदी हिस्से को वन क्षेत्र बनाने के लक्ष्य से बहुत पीछे है. अर्थव्यवस्था में वृद्धि पर ध्यान देकर देश को समृद्धि की राह पर बनाये रखने के साथ वन क्षेत्रों के संरक्षण को प्राथमिकता देकर विकास, पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों पर संतुलित नीति और कार्य-योजना बनाने की आवश्यकता है.

साल 2014 से 2017 के बीच हमारे देश में हर दिन 63 फुटबॉल मैदान के बराबर जंगली इलाके को खेत, खनन, शहर, सड़क और उद्योग के लिए उजाड़ा गया.

तेरह प्वॉइंट रोस्टर का मुद्दा

डॉ अनुज लुगुन
सहायक प्रोफेसर, दक्षिण बिहार केंद्रीय विवि, गया
anujlugun@cub.ac.in

तेरह प्वॉइंट रोस्टर से आरक्षित वर्गों को व्यावहारिक लाभ नहीं मिल रहा है. इसका संदर्भ जातीय नहीं है, बल्कि संविधान की मूल भावना से है. हर न्यायपसंद नागरिक को इस पर हस्तक्षेप करना चाहिए.

बातचीत के दौरान 13 प्वॉइंट रोस्टर पर कुछ विद्यार्थी यह चिंता जाहिर कर रहे थे कि यदि नियुक्तियों में इसी तरह के रोस्टर लागू होंगे, तो हमारे पढ़ने-लिखने का कोई मतलब नहीं रह जायेगा. यह व्यवस्था तो प्राचीन मनुवादी सामाजिक व्यवस्था की सूचक है, जिसमें वंचित समुदायों के समान अवसरों का निषेध किया जाता रहा है. तेरह प्वॉइंट रोस्टर को लेकर उनकी यह चिंता वाजिब है. उनकी इस चिंता में न केवल उनका भविष्य शामिल है, बल्कि उनके इतिहास की स्मृतियां भी शामिल हैं. यह अनायास नहीं है.

तेरह प्वॉइंट रोस्टर केंद्रीय विश्वविद्यालयों में शिक्षकों की नियुक्ति के लिए आरक्षण की नयी व्यवस्था है. इसे पहले के 200 प्वॉइंट रोस्टर की जगह लागू किया गया है. दो सौ प्वॉइंट रोस्टर में विवि में सीटों के निर्धारण के लिए विवि को आधार बनाकर आरक्षण का रोस्टर लागू किया जाता था. तेरह प्वॉइंट रोस्टर में विश्वविद्यालयों की जगह विभाग को इकाई मान कर आरक्षण के रोस्टर की व्यवस्था की गयी है. विश्वविद्यालयों में नियुक्ति के लिए आरक्षण की व्यवस्था कुल सीटों की संख्या के अनुपात में होती है. जब विश्वविद्यालयों को इकाई मान कर आरक्षण के रोस्टर की व्यवस्था थी, तब लगभग सभी वर्ग के उम्मीदवारों के लिए सीट निकल जाती थी, क्योंकि विवि को इकाई मानने से सीटों की संख्या ज्यादा होती है. वहीं जब विभाग को इकाई मान कर आरक्षण के रोस्टर की व्यवस्था होगी, तो सभी वर्गों के उम्मीदवारों का प्रतिनिधित्व नहीं हो पायेगा, क्योंकि विभाग में सीटों की संख्या कम होती है. उदाहरण के लिए, नये केंद्रीय विश्वविद्यालयों में प्रत्येक विभाग में बुनियादी सीटों की कुल संख्या सात है- एक प्रोफेसर, दो एसोसिएट प्रोफेसर और चार सहायक प्रोफेसर. इतने सीटों को यदि 13 प्वॉइंट रोस्टर के आधार पर बांटा जाये, तो पांच सीट अनारक्षित के लिए होंगी, एक ओबीसी के लिए और एक एससी के लिए. इस रोस्टर के आधार पर एसटी की बारी चौदहवें नंबर पर है, जो कि कई वर्षों में कभी नहीं आनेवाला है. इस व्यवस्था से एसटी तो पूरी तरह परिदृश्य से गायब हो जायेंगे. यह तो अनुमानित सीटों का उदाहरण है. वास्तविकता तो यह है कि कभी भी एक मुश्त सीटों की संख्या नहीं निकलती है. जब खुदरा सीट निकाले जाते हैं, तो आरक्षित वर्ग की भागीदारी की कोई गुंजाइश नहीं दिखती है. विश्वविद्यालय को इकाई मानने से यह समस्या नहीं होती है. इसमें यह भी प्रावधान था कि किसी विभाग में पचास प्रतिशत से ज्यादा आरक्षण नहीं होगा. इस तरह देखा जाये, तो 13 प्वॉइंट रोस्टर सभी वर्गों के उम्मीदवारों की समान भागीदारी के सिद्धांत पर आधारित नहीं है. यह अप्रत्यक्ष तौर पर संविधान में निहित सबको समान अवसर की उपलब्धता के अधिकार के विरुद्ध भी है. यही वजह है कि 13 प्वॉइंट रोस्टर का विरोध हो रहा है.

इस बीच 13 प्वॉइंट रोस्टर को लेकर इसके पक्ष-विपक्ष आमने-सामने हैं. पक्ष में यह तर्क दिया जा रहा है कि अनारक्षित सीट के अंतर्गत सभी वर्ग शामिल होते हैं. जबकि वास्तविकता यह है कि अब तक अनारक्षित सीट के नाम पर केवल सामान्य वर्गों की ही नियुक्ति होती रही है. अनारक्षित वर्ग सामान्य वर्ग के लिए रूढ़ हो गया है. इसके सैकड़ों उदाहरण हैं. कभी भी एससी और एसटी वर्ग को आरक्षित सीट को छोड़ कर अनारक्षित सीट में नियुक्त नहीं किया गया है. अनारक्षित सीटों के लिए हमेशा आरक्षित वर्ग को 'अयोग्य' माना जाता रहा है. दुर्भाग्य तो यह है कि विश्वविद्यालयों में सभी आरक्षित सीटों को अब तक भरा भी नहीं गया है. बड़ी संख्या में बैकलॉग सीटें खाली हैं. ऐसे में अनारक्षित सीटों को सभी वर्गों का मानना व्यावहारिक नहीं लगता है. सच तो यह है कि नियुक्ति और सीटों के मामले में जातीय वर्चस्व हावी रहा है. यह विश्वविद्यालयों में सामाजिक समूहों की भागीदारी से भी साबित होता है. काशी हिंदू विवि (बीएचयू) और जेएनयू जैसे बड़े नामचीन विश्वविद्यालयों में भी आरक्षित समूह के प्रोफेसरों की संख्या गिनती भर की है. अगर हम केंद्रीय विश्वविद्यालयों में विभिन्न सामाजिक समूहों की भागीदारी का आंकड़ा देखें, तो पाते हैं कि इसमें केवल सामान्य वर्गों की भागीदारी 90 प्रतिशत से ज्यादा है और ओबीसी, एससी, एसटी की कुल भागीदारी दस प्रतिशत से भी कम है. इंडियन एक्सप्रेस द्वारा यूजीसी से प्राप्त आरटीआई आंकड़ों के अनुसार, देश के चालीस केंद्रीय विश्वविद्यालयों में प्रोफेसर के पद पर सामान्य वर्ग की भागीदारी 95.2 प्रतिशत है, जबकि ओबीसी की भागीदारी 0 प्रतिशत, एससी की 3.4 प्रतिशत एवं एसटी की 0.7 प्रतिशत है. यह आंकड़ा हैरत में डालनेवाला है. इस तरह के असंतुलित आंकड़े न केवल नियुक्तियों के मामले में होनेवाले जातिगत भेदभाव के संदेह को पैदा करते हैं, बल्कि संवैधानिक व्यवस्था वाले समाज में सभी सामाजिक समूहों की समान भागीदारी पर भी सवाल खड़े करते हैं. इस बीच ऐसे ही संदेह की स्थिति तब पैदा हो गयी, जब 13 प्वॉइंट रोस्टर को इलाहाबाद हाइकोर्ट ने लागू करने की मान्यता दे दी और सुप्रीम कोर्ट ने भी उसे स्वीकृत कर लिया. तब आनन-फानन में कई विश्वविद्यालयों ने नियुक्ति के लिए विज्ञप्ति भी जारी कर दी. कई जगह दशकों बाद अचानक नियुक्तियों में हलचल शुरू हो गयी. विडंबना की बात तो यह रही कि आरक्षित एवं बैकलॉग की सीटों को भरने की न कभी जल्दीबाजी हुई और न ही कभी इस तरह का कोई उत्साह रहा है. इसलिए इसके विरोध में उठ रहा स्वर इसमें जातीय भेदभाव का कारण देख रहा है.

आदर्श रूप में जो भी कहा जा रहा हो, लेकिन 13 प्वॉइंट रोस्टर से आरक्षित वर्गों को व्यावहारिक लाभ नहीं मिल रहा है. इसका संदर्भ जातीय नहीं है, बल्कि संविधान की मूल भावना से है. हर न्यायपसंद नागरिक को इस पर हस्तक्षेप करना चाहिए. अब यह राजनीतिक मुद्दा बन गया है. विपक्ष इसे रोकने के लिए अध्यादेश लाने की मांग कर रहा है. इसमें सरकार की नीति टाल-मटोल की है. भारी विरोध के बीच सरकार सुप्रीम कोर्ट में पुनर्विचार याचिका दायर करने की बात कर रही है. इस बीच सदन में मानव संसाधन मंत्री प्रकाश जावड़ेकर ने कहा है कि 13 प्वॉइंट रोस्टर के आधार पर नियुक्ति पर रोक लगेगी. बेहतर होगा कि नियुक्तियों के मामले में सभी सामाजिक समूहों की समान भागीदारी की व्यावहारिक नीति बने, न कि हवाई आदर्शमूलक. वंचित समुदायों के प्रति विशेष संवैधानिक संवेदनशीलता बरती जानी चाहिए, अन्यथा हम संविधान की मूल भावना से दूर होते जायेंगे. हम ऐसी संकीर्णता में उलझते चले जायेंगे, जिसकी चिंता विद्यार्थी कर रहे हैं.

बोधि वृक्ष

भक्ति दिव्य प्रेम है

तुम एक ऐसे पदार्थ से बने हो, जिसका नाम है प्रेम. तुम्हारी चेतना प्रेम से भरी है. प्रेम हमारा अस्तित्व है. तुम्हारे शरीर के सभी अणु एक-दूसरे से प्रेम करते हैं और तभी तो तुम एक मनुष्य के रूप में हो. तभी तो एक मालिक है. जिस क्षण ये प्रेम का बंधन छूट जाये, उसी क्षण इस शरीर का नाश हो जाता है. मैं प्रेम को अस्तित्व के रूप में देखता हूं, न कि केवल एक भावना के रूप में. प्रेम के साथ ज्ञान हो तो आनंद होता है. अज्ञान की वजह से, ज्ञान के बिना प्रेम की वजह से ईर्ष्या, लालच, क्रोध, निराशा, और सभी कुछ आता है. ये सभी नकरात्मक भाव, प्रेम से ही उपजे हैं. अगर प्रेम ना हो तो तुम किसी से ईर्ष्या नहीं करोगे. है कि नहीं? यदि तुम्हें लोगों से अधिक चीजों से प्रेम हो तो उसे लालच कहते हैं. आप किसी को आवश्यकता से अधिक प्रेम करें, तो उससे उस पर स्वामित्व जताने लगते हैं. आपको उत्तमता से प्रेम हो, तो आपको जरा सी बात पर क्रोध आ जाता है. प्रेम को ज्ञान की लगाम की आवश्यकता है. जीवन का केंद्र प्रेम है, पर फिर भी हम अपने केंद्र से इतने दूर प्रतीत होते हैं. ऐसा क्या है जो हमे अपने केंद्र से जोड़ सकता है, जो हमे अपने में वापिस ला सकता है? यह एक निरंतर खोज है. जुड़े रहने के लिए एक सूत्र चाहिए, ऐसा कुछ जो जीवन में आशा बढ़ाये रखे, ऐसा कुछ जो तुम्हारे हृदय को हलका रखे. ऐसा क्या है, जिसकी जीवन में कमी है और जिसके होने से जीवन पीड़ा से उत्सव में परिवर्तित हो जाता है, जिससे पीड़ा के आंसू खुशी के आंसुओं में परिवर्तित हो जाते हैं. वह धागा हमें चाहिए और उसे ही सूत्र कहते हैं- कुछ ऐसा हो जो तुम्हें थामे रखता है. नारद भक्ति सूत्र ऐसे ही सूत्र हैं. नारद का अर्थ है जो केंद्र और परिधि दोनों में है और जो केंद्र से जोड़ता है. हम में से बहुत केवल परिधि में ही अटके रहते हैं, हम बाहर ही चक्कर काटते रहते हैं. जब जीवन रुका हुआ सा प्रतीत हो, तो तुम्हें नारदा के पास जाना है, वे तुम्हें आगे बढ़ाते हैं. और वे ऐसा कैसे करते हैं? कुछ ज्ञान के शब्दों से, भक्ति सूत्र से. भक्ति दिव्य प्रेम है- प्रेम की पराकाष्ठा है.

श्रीश्री रविशंकर

सोलहवीं लोकसभा का कामकाज

अंकिता नंदा
प्रोजेक्ट एसोसिएट, पीआरएस लेजिस्लेटिव रिसर्च
ankita@prsindia.org

सोलहवीं लोकसभा ने कुल 1,615 घंटों तक काम किया और पांच वर्षों के दौरान 331 दिन बैठकें हुईं. पंद्रहवीं लोकसभा के मुकाबले 16वीं लोकसभा ने 20 प्रतिशत अधिक काम किया.

साल 2019 के बजट सत्र के समापन के साथ 16वीं लोकसभा का अवसान हो गया. पिछले पांच वर्षों के दौरान 133 विधेयक पारित हुए- खास तौर से वित्त, स्वास्थ्य, कानून और न्याय, शिक्षा से जुड़े. पिछली दो लोकसभाओं- 14वीं और 15वीं- की तुलना में 16वीं लोकसभा में निचले सदन में एक राजनीतिक दल का बहुमत था. इस लोकसभा ने कई पैमानों पर बेहतर प्रदर्शन किया. हालांकि, 15वीं लोकसभा के मुकाबले 16वीं लोकसभा में अधिक घंटों तक कामकाज हुआ- यानी उत्पादकता ज्यादा रही. लेकिन कई दूसरे मोर्चों पर जरूरी सक्रियता नहीं दिखायी गयी.

सोलहवीं लोकसभा ने कुल 1,615 घंटों तक काम किया और पांच वर्षों के दौरान 331 दिन बैठकें हुईं. पंद्रहवीं लोकसभा के मुकाबले 16वीं लोकसभा ने 20 प्रतिशत अधिक काम किया. लेकिन, अगर हम उन दूसरी लोकसभाओं से तुलना करें, जो पूरे पांच वर्षों तक चलीं, तो यह ऐसी दूसरी लोकसभा होगी, जिसने सबसे कम घंटों तक काम किया. इस लोकसभा की उन पिछली लोकसभाओं से तुलना करने पर पता चलता है कि बैठक के दिनों में भी गिरावट हुई है.

संसद की तीन मुख्य जिम्मेदारियां होती हैं- कानून बनाने के लिए विधेयक पारित करना, जनहित के मुद्दों पर चर्चा करना और सरकार की जवाबदेही तय करना. संसद विधायी कामकाज पर चर्चा के अतिरिक्त प्रश्न काल, महत्वपूर्ण विषयों पर चर्चा और ध्यानाकर्षण के जरिये अपने मुख्य दायित्व निभाती है. विधायी कामकाज पर 16वीं लोकसभा का 32 प्रतिशत समय व्यतीत हुआ. यह पिछली लोकसभा की तुलना में अधिक है. जहां तक गैर-विधायी कामकाज का सवाल है, इस लोकसभा में प्रश्नकाल में 13 प्रतिशत, अल्पावधि की चर्चा में 10 प्रतिशत और ध्यानाकर्षण प्रस्ताव पर 0.7 प्रतिशत समय व्यतीत हुआ.

उल्लेखनीय है कि पिछली तीन लोकसभाओं में प्रश्नकाल के घंटों में भी गिरावट दर्ज हुई है. इससे तारांकित प्रश्नों की संख्या पर असर पड़ा, जिनके मौखिक उत्तर दिये जाते हैं. पंद्रहवीं लोकसभा के मुकाबले 16वीं लोकसभा में प्रश्नकाल के दौरान 67 प्रतिशत ही काम हुआ और उस दौरान 18 प्रतिशत तारांकित प्रश्नों के मौखिक उत्तर प्राप्त हुए. हालांकि, इसमें भी सुधार की गुंजाइश है. चूंकि प्रश्नकाल के दौरान संसद सदस्यों को यह मौका मिलता है कि वे मंत्रियों से उनके मंत्रालयों के बारे में प्रश्न पूछ सकें और उनकी जवाबदेही तय कर सकें.

सोलहवीं लोकसभा में 133 विधेयक पारित हुए, जो कि 15वीं लोकसभा में पारित विधेयकों की तुलना में 15 प्रतिशत अधिक है. इन विधेयकों में जीएसटी, दिवालिया संहिता, आपराधिक कानून (संशोधन) विधेयक और आधार विधेयक शामिल हैं. पिछले पांच वर्षों के दौरान 45 अध्यादेश जारी किये गये और वित्त क्षेत्र पर बहुत अधिक बल दिया गया. उसके रेगुलेशन पर सबसे अधिक विधेयक लाये गये. वित्त क्षेत्र से संबंधित 26 प्रतिशत विधेयक पारित किये गये. जैसे देश की कर संरचना में सुधार के लिए जीएसटी लाया गया. भगोड़ा आर्थिक अपराधी विधेयक के जरिये आर्थिक अपराधियों को सजा देने का प्रावधान किया गया और बीमा संशोधन विधेयक लाया गया. पारित विधेयकों में 10 प्रतिशत शिक्षा क्षेत्र से संबंधित थे. इनमें से एक विधेयक ने शिक्षा के अधिकार कानून की 'नो डिटेंशन नीति' में परिवर्तन किया.

सोलहवीं लोकसभा के अंत में 46 विधेयक लैप्स हो गये. स्वास्थ्य क्षेत्र से जुड़े 70 प्रतिशत विधेयक पारित ही नहीं हुए. इसमें राष्ट्रीय मेडिकल आयोग विधेयक शामिल है, जिसे मेडिकल शिक्षा और प्रैक्टिस को नियंत्रित करने के लिए पेश किया गया था. अन्य विधेयकों में उपभोक्ता संरक्षण विधेयक, तीन तलाक विधेयक, मोटर वाहन विधेयक और नागरिकता (संशोधन) विधेयक शामिल हैं.

सोलहवीं लोकसभा ने 15वीं लोकसभा की तुलना में विधेयकों पर अधिक समय तक चर्चा की. इसके द्वारा पारित 32 प्रतिशत विधेयकों पर तीन घंटे से अधिक की चर्चा हुई. दरअसल, विधेयक पर अधिक समय तक चर्चा करने से सदस्यों को विधेयक के प्रावधानों पर बहस करने का मौका मिलता है और यह सुनिश्चित होता है कि पारित होनेवाले प्रत्येक विधेयक पर पर्याप्त विचार-विमर्श किया गया है.

पारित होनेवाले विधेयकों की संख्या में बढ़ोतरी और उस पर अधिक घंटों तक चर्चा होने के बावजूद विधेयकों को संसदीय समितियों के पास कम संख्या में भेजा गया. संसदीय समितियां किसी विधेयक की बारीकी से पड़ताल करती हैं. विशेषज्ञों और आम जनता से सक्रिय संवाद होता है और दलों के बीच आम सहमति कायम करने में मदद मिलती है. सोलहवीं लोकसभा में केवल 25 प्रतिशत विधेयकों को विचार के लिए संसदीय समितियों के पास भेजा गया. जबकि, पिछली 15वीं और 14वीं लोकसभा के दौरान क्रमशः 71 और 60 प्रतिशत विधेयकों को संसदीय समितियों के पास भेजा गया था.

अब 17वीं लोकसभा की प्रतीक्षा की जा रही है. इसके मद्देनजर संसदीय समिति की प्रणाली में सुधार की जरूरत है. कानून प्रभावी तरीके से बनाये जाएं, इसके लिए बड़ी संख्या में विधेयकों को संसदीय समितियों के पास भेजा जाना चाहिए. इसी के समानांतर, संसदीय समिति की प्रणाली को सशक्त बनाने के लिए यह भी जरूरी है कि शोध अनुसंधान के जरिये उन्हें सहयोग प्रदान किया जाये.

आपके पत्र

अघोषित चुनावी मुद्दा

चुनाव का वक्त आते ही विभिन्न राजनीतिक पार्टियां अपना घोषणा-पत्र जनता के सामने रखती हैं, जिसमें उनका मुख्य मुद्दा घोषित किया जाता है. हर बार लोकसभा चुनाव प्रधानमंत्री चुनने के लिए होता है, पर इस बार अलग बयार बह रही है. ऐसा प्रतीत हो रहा है कि इस बार प्रधानमंत्री चुनने की जगह, हटाने के लिए चुनाव हो रहा है और यह एक अघोषित मुद्दा है, जो बिन कहे सभी मतदाता समझ रहे हैं. यह किसी भी लोकतंत्र के लिए घातक है, क्योंकि कल तक एक-दूसरे का मुंह तक न देखने वाली पार्टियां आज मिल गयी हैं. क्या यह मिलाप जनता की भलाई के लिए है? एक कहावत है, हाथी के दांत दिखाने के और खाने के अलग-अलग होते हैं. पक्ष और विपक्ष दोनों को जनता देख चुकी है. इस अघोषित मुद्दे का कितना असर होगा, वह आनेवाले समय में जनता ही बतायेगी.

सीमा साही, बोकारो

आखिर सच तो सच है

बुधवार को संसद में 16वीं लोकसभा के आखिरी सत्र का आखिरी दिन रहा, जिसमें एक बार फिर पक्ष-विपक्ष एक-दूसरे पर जम कर निशाना साधते दिखे. साथ ही प्रधानमंत्री मोदी भी अपने पांच वर्षों के कार्यकाल को याद कर भावुक होते दिखे, परंतु सबसे रोमांचक पल वह था, जब विपक्ष के एक बड़े दिग्गज नेता मुलायम सिंह यादव द्वारा मोदी के कार्यों की सराहना की गयी और अगले पांच साल फिर से मोदी जी को ही प्रधानमंत्री बनने की अपनी ख्वाहिश भी जाहिर की. मोदी जी ने भी उनकी इन बातों को खुल कर सम्मान दिया और धन्यवाद दिया. मुलायम सिंह यादव ने जो भी कहा, वह सच्चाई को देखते हुए दिल से कहा. उनकी ये बातें राजनीति से ऊपर उठ कर कही गयी बातें हैं. अन्य विपक्षी नेताओं को उनसे सीख लेनी चाहिए कि जिस तरह से आप सरकार के गलत निर्णयों या फैसलों का विरोध करते हैं, उसी प्रकार सरकार के अच्छे कार्यों में उनका साथ भी दें, सहयोग करें और देश की उन्नति में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएं.

शुभम गुप्ता, नावागढ़, धनबाद

सिकुड़ते सार्वजनिक उपक्रम

ऐसा लग रहा है कि आने वाले एक दशक के अंदर देश के तमाम सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम इतिहास बन जायेंगे. एक-एक करके ये उपक्रम बंद हो रहे हैं या सिकुड़ते जा रहे हैं. सरकारें जानबूझ कर इनकी वित्तीय सहायता कम कर रही है या खत्म कर रही है. यह सिलसिला आज से नहीं, बल्कि 1991 से शुरू हो गया था. आर्थिक उदारीकरण के नाम पर. अब स्थिति यह है कि सरकारी क्षेत्र के बैंकों की हालत भी ठीक नहीं है. भारतीय रेल को हिस्सों में निजी हाथों को सौंपा जा रहा है. इधर बीएसएनएल के कर्मचारियों पर गाज गिराने का एलान हो चुका है. 1.80 लाख कामगारों में से 35 हजार को स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति देने का कदम उठाया जा चुका है. सरकार का यह तर्क सही हो सकता है कि व्यापार करना व्यापारियों का काम है, मगर सरकारी उपक्रम व्यापार के साथ सामाजिक दायित्व का भी निर्वहन करते है.

जंग बहादुर सिंह, गोलपहाड़ी, जमशेदपुर

कुछ अलग

सारा जहां सभी का

संतोष उत्सुक
व्यंग्यकार
santoshutsuk@gmail.com

हर परिवार का मुखिया अपने तरीके से परिवार का नाम चमकाने के लिए कितनी तरह के जुगाड़ करता है. अमेरिका के राष्ट्रपति, अमेरिकी जीवन में अनेक चांद और मंगल लगाने के लिए क्या-क्या नहीं कर रहे हैं. उधर अमेरिकी और बेल्जियम के विश्वविद्यालय मिल कर कैसे-कैसे शोध करवाते रहते हैं. अमेरिकियों ने मूल शोध पर दोबारा चार साल तक शोध करवाया और पिछले दिनों पता नहीं क्यों उसे जग जाहिर कर दिया. हमारे यहां तो ऐसे शोध पर बैन लगा देते, जारी करने का तो सवाल भी नहीं उठता.

विदेश में स्थायी रूप से बसने को चौबीस घंटे लालायित, वहां दशकों रहने के बाद भी हम कहते रहते हैं कि अपना मुल्क तो अपना ही होता है जी, क्योंकि परदेस में हम दूसरे दर्जे के नागरिक जो होते हैं. अमेरिकी भी मानते हैं कि नागरिक के तौर पर उनकी सशक्त राष्ट्रीय पहचान नहीं है. उस अध्ययन के अनुसार, अमेरिकी भी हमारी तरह अपने देश में रहकर खुश नहीं हैं. वैसे यह बोलना अच्छी बात तो नहीं है. दुनियाभर के लोग अमेरिका में बसने के लिए महा-उत्सुक रहते हैं, लेकिन अंतरराष्ट्रीय माइग्रेशन रिव्यू के मुताबिक, हर तीन में से एक अमेरिकी नागरिक अवसर मिलते ही किसी और देश में बसना चाहता है. ऐसी तमन्ना है, लेकिन मानना नहीं चाहिए.

हमारे यहां ऐसा अध्ययन या शोध या सर्वे करने की कोई जरूरत नहीं है. सिर्फ राजनेताओं और उनकी पूंछों एवं सींगों को छोड़कर हमारा तो पूरा देश ही विदेश में बसने को तैयार है. बस इनकी और उनकी विदेश यात्राएं जारी रहनी चाहिए. हम अमेरिका जाने के लिए जरूरी सामान बांधे तैयार बैठे हैं, बस एक बार कोई बुला ले या फेंकवा दे, अवसर मिलने पर पैदल भी जा सकते हैं. एक बार घुस जाएं, तो फिर बाद में किसी न किसी तरह के जुगाड़ का आविष्कार हो ही जायेगा. दुनिया घूम लेना चाहते हैं हम सरकारी या कंपनी के खर्चे पर. उधर सतासी प्रतिशत अमेरिकियों की भी दुनिया घूमने की इच्छा है. विदेशियों द्वारा अपना सब कुछ बेच कर दुनियाभर में घुमक्कड़ी करने के बारे में तो खबरें आती ही रहती हैं, लेकिन हम तो अपने मकान और सामान को बेहद प्यार करते हैं. यहां घर में पड़े, सेहत को नुकसान पहुंचाउ सालों पुराने प्लास्टिक बर्तनों को भी छोड़ा नहीं जा सकता.

आधे अमेरिकी सेवानिवृत्ति के बाद अमेरिका से बाहर बसना चाहते हैं, लेकिन हमारे यहां सेवानिवृत्ति का मतलब पूरी निवृत्ति ही मान ली जाती है. वहां के आधे निवासियों ने माना कि देश में बुरे हालात हैं, लेकिन हमारे यहां ऐसा सोचना ही गलत है, मान तो सकते ही नहीं और ऐसा कहना तो दूर की बात है. क्या अमेरिका वाले किसी नये कोलंबस की खोज में हैं, जो उनके लिए नया अमेरिका खोज लाये? नया कोलंबस कुछ नया करे न करे, लेकिन इस शोध से यह ज्ञान जरूर प्राप्त होता है कि इसमें किसी को भी बख्शा नहीं जाना चाहिए. ऐसा किया जाता है, तो सच्चाई जैसी चीज, जो धीरे-धीरे गायब की जा रही है, हमारे देश से भी बहुत जल्दी गायब हो सकती है!

देश दुनिया से

अरब अर्थव्यवस्था को मिलतीं चुनौतियां

मध्य-पूर्व (मिडिल ईस्ट) की तेल समृद्ध अर्थव्यवस्था अपने लंबे-चौड़े वादों और भव्य योजनाओं के बावजूद विविधता लाने में विफल रही है, क्योंकि इन देशों में राजनीतिक प्रोत्साहन की कमी है. कई अन्य देश यदि अपनी अर्थव्यवस्था में विविधता लाने में सफल रहे हैं, तो यह केवल अच्छी नीतियों की वजह से नहीं, बल्कि अपने बलबूते कुछ करनेवालों के लिए सही राजनीतिक प्रोत्साहन मिलने की वजह से हुआ है. बोत्सवाना की अगर बात करें, तो वह स्थिर राजनीतिक गठबंधन और अनुकूल प्रारंभिक और बाहरी परिस्थितियों की भूमिका को रेखांकित करता है. वहीं दक्षिण अफ्रीकी सीमा शुल्क संघ में बोत्सवाना की सदस्यता ने समझदारी भरे मैक्रो इकॉनॉमिक सुधार के लिए सकारात्मक कार्य किये. इन कारकों ने साथ मिल कर गैर-संसाधन क्षेत्र के हितों की सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी. मलयेशिया में भी ऐसा ही कुछ हुआ था. हालांकि, अलग-अलग देशों के मामले अलग-अलग होते हैं और उनका विश्लेषण भी अलग-अलग ही किया जाना चाहिए. लेकिन, इन सब में राजनीति हर जगह मौजूद है. और, इसी क्षेत्र से अरब अर्थव्यवस्था को विशेष रूप से चुनौती मिलती रही है.

ALJAZEERA

कार्टून कोना

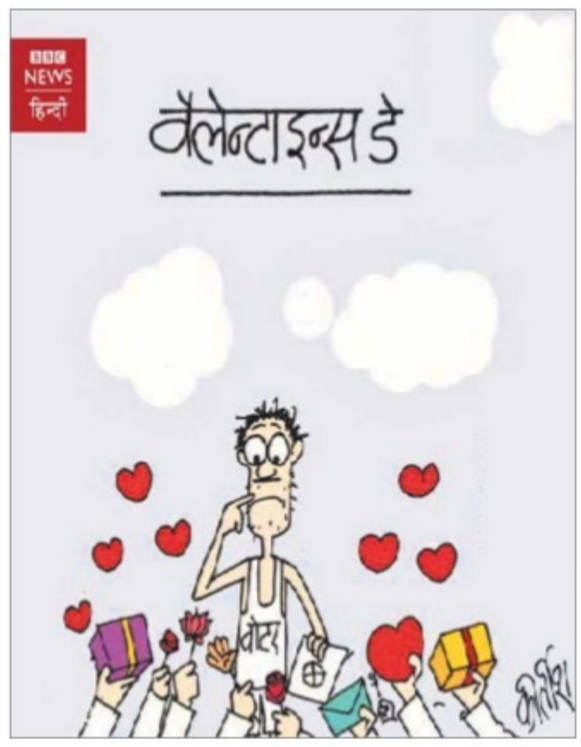

साभार : बीबीसी

पोस्ट करें : प्रभात खबर, 15 पी, इंडस्ट्रियल एरिया, कोकर, रांची 834001, **फैक्स करें** : 0651-2544006,
मेल करें : eletter@prabhatkhabar.in पर ई-मेल संक्षिप्त व हिंदी में हो. लिपि रोमन भी हो सकती है